REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 14 | ISSUE - 6 | MARCH - 2025

भारतीय सिनेमा और समाज के रचनात्मक साहचर्य का अध्ययन

तेजभान सिंह
शोधार्थी हिन्दी
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. सुरेन्द्र बहादुर सिंह चौहान
प्राध्यापक हिन्दी
शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीधी (म.प्र.)

सारांश –

यह भारतीय सिनेमा और समाज के बीच के रचनात्मक साहचर्य का अध्ययन करता है, जो भारतीय सिनेमा की सामाजिक जिम्मेदारी, उसके सांस्कृतिक प्रभाव और समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया को स्पष्ट करता है। भारतीय सिनेमा, जो कि एक विशाल और विविधतापूर्ण माध्यम है, न केवल मनोरंजन का साधन है, बल्कि यह समाज के विभिन्न पहलुओं का प्रतिबिंब भी है। इस अध्ययन में यह विश्लेषण किया जाएगा कि कैसे भारतीय सिनेमा ने समाज के विभिन्न मुद्दों, जैसे कि जातिवाद, वर्ग भेद, लिंग असमानता और सामाजिक न्याय को सामने रखा और इन मुद्दों पर प्रतिक्रिया व्यक्त की। इसके अलावा, यह भी देखा जाएगा कि भारतीय सिनेमा समाज में जागरूकता और बदलाव लाने में किस प्रकार सहायक रहा है।

मुख्य शब्द – भारतीय सिनेमा, समाज, साहचर्य, सामाजिक जिम्मेदारी एवं सांस्कृतिक प्रभाव।

प्रस्तावना –

भारतीय सिनेमा दुनिया के सबसे बड़े और विविध सिनेमा उद्योगों में से एक है। यह न केवल मनोरंजन का एक प्रमुख साधन है, बल्कि भारतीय समाज, संस्कृति और राजनीति का एक महत्वपूर्ण दर्पण भी है। भारतीय सिनेमा की शुरुआत से ही यह समाज की जटिलताओं, संघर्षों और सांस्कृतिक विविधताओं का चित्रण करता आया है। यह सामाजिक मुद्दों को सामने लाने, बदलाव की दिशा में प्रेरित करने और समाज में जागरूकता फैलाने का एक सशक्त माध्यम बना है। इस पेपर का उद्देश्य भारतीय सिनेमा और समाज के बीच के रचनात्मक साहचर्य का विश्लेषण करना है, और यह समझना है कि सिनेमा किस प्रकार समाज को प्रतिबिंबित करता है और उसे आकार देता है।

भारतीय सिनेमा ने समय–समय पर समाज की मानसिकता, सोच और दृष्टिकोण को प्रभावित किया है। प्रारंभिक फिल्मों में राजा–रानी की कहानियाँ और सामाजिक मान्यताओं का चित्रण था, जबकि बाद में फिल्मों ने आम आदमी के जीवन, संघर्षों और सामाजिक असमानताओं पर ध्यान केंद्रित किया। 'दो बीघा जमीन', 'गांधी', 'शोले', 'स्लमडॉग मिलियनेयर', 'पिंक' जैसी फिल्में समाज के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती हैं।

भारतीय सिनेमा ने सामाजिक मुद्दों जैसे गरीबी, जातिवाद, महिला सशक्तिकरण, और भ्रष्टाचार को बड़े पर्दे पर प्रभावी तरीके से प्रस्तुत किया है। इन फिल्मों ने न केवल समाज की वास्तविकताओं को सामने रखा,

बल्कि दर्शकों को इन मुद्दों पर विचार करने के लिए प्रेरित भी किया। सिनेमा ने भारतीय समाज में महत्वपूर्ण बदलावों को प्रेरित किया। यह बदलाव न केवल सोच में था, बल्कि व्यवहार में भी था। जैसे कि 'मदर इंडिया' जैसी फिल्में महिला सशक्तिकरण के संदेश को बढ़ावा देती हैं, वहीं 'तारे जमीन पर' जैसी फिल्में शिक्षा और मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों पर ध्यान आकर्षित करती हैं।

भारतीय सिनेमा ने भारतीय संस्कृति को विश्वभर में पहचान दिलाई है। फिल्मों में भारतीय पारंपरिक मूल्य, रीति–रिवाज, और त्योहारों का चित्रण होता है। इन फिल्मों के माध्यम से भारतीय समाज की विविधता, धार्मिक विविधता, और सांस्कृतिक धरोहर का प्रदर्शित किया गया है। सिनेमा ने न केवल भारतीयों को अपनी संस्कृति से जोड़ने का काम किया है, बल्कि अन्य देशों में भी भारतीय संस्कृति की समझ और सराहना बढ़ाई है।

भारतीय सिनेमा का समाज के साथ गहरा रचनात्मक संबंध है। समाज के विभिन्न पहलू और उसका चित्रण सिनेमा में कलाकारों और निर्देशकों की रचनात्मकता का परिणाम होता है। सिनेमा समाज की वास्तविकताओं को न केवल दिखाता है, बल्कि वह समाज की समस्याओं पर विचार करने और उन्हें हल करने का एक प्रेरणास्रोत भी बनता है। निर्देशक, लेखक, और अभिनेता समाज की आवाज बनकर काम करते हैं, और उनके माध्यम से समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया को गति मिलती है। आजकल भारतीय सिनेमा में समकालीन मुद्दों को केंद्रित किया जाता है, जैसे कि डिजिटल मीडिया, पर्यावरणीय संकट, LGBTQ अधिकार, और आर्थिक असमानताएँ। 'संजू', 'दीवार', 'क्वीन', 'सोनचिड़िया' जैसी फिल्में इस बदलाव को दर्शाती हैं कि सिनेमा अब समाज के अधिक गहरे और सुसंगत पहलुओं को उजागर करने का प्रयास कर रहा है।

वसुधा प्रकाशकीय वृत्त के अंर्तगत राजेन्द्र शर्मा ने यह उल्लेख किया है कि, हिंदी सिनेमा के भारतीय समाज पर पड़े प्रभावों के आकलन के लिए अंक के अतिथि संपादक प्रहलाद अग्रवाल ने हमारे लेखकों को यह छूट दी कि वे किसी भी और कैसी भी फिल्म के बारे में अपनी स्मृतियों को अपने पाठकों के साथ साझा करें और अब 'प्रगतिशील वसुधा' का यह बहुप्रतीक्षित फिल्म अंक अपने पाठकों के सामने लाते हुए हमें एक अधूरा संतोष है। अधूरा इसलिए कि साथी प्रहलाद अग्रवाल द्वारा जुटाई जा रही अकूत सामग्री से चुने हुए आस्वादपरक आलेखों का यह खंड मात्र है।[1] संपादकीय लेखन में कमला प्रसाद ने अपने लेख में यह स्पष्ट किया है कि, भारतीय फिल्मों को संसार की प्रतियोगिता में ले जाने के लिए प्रायः व्यावसायिक फिल्मों का चयन नहीं होता, अमरीका की टाइम पत्रिका जब श्रेष्ठ भारतीय फिल्मों का चयन करती है तो 'आवारा', 'मदर इंडिया, 'शोले', 'अंकुर', 'चोखरे वाली', 'मकबूल', 'जन अरण्य', 'देवदास' के नाम आते हैं। पिछले दशकों में अमिताभ बच्चन को प्रशंसा तो मिली है पर उन फिल्मों के कारण जो कला फिल्में हैं। ऐश्वर्या राय परम्परागत मूल्यों को वहन करने वाली भारतीय फिल्मों की नायिका के रूप में चर्चित हुई हैं। आश्चर्य है कि वर्ष 2003 के अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह में 18 भारतीय फिल्मों के पनोरमा में 5 मलयाली की हैं और हिंदी की दो। फिल्मों के विकास और चर्चा में फिल्म प्रचार का काफी महत्व है। आजकल तो ऐसी कम्पनियाँ है जो ठेके के पैकेज के आधार पर काम करती हैं। लोकप्रिय फिल्में मर्यादा से बाहर जाती हैं। सेंसर बोर्ड की भूमिका पर सवाल उठते ह। यह बोर्ड निष्पक्ष रह सके तो फिल्म जगत समृद्ध होता है। प्रचार–प्रसार के तकनीकी माध्यमों के कारण हिन्दी फिल्में, दुनिया के किसी देश की फिल्में उपलब्ध हैं। वहाँ बाजारु फिल्में हैं तो कला फिल्में भी।[2]

विश्लेषण –

सन् 1857 से 1947 के बीच में हमारे समाज में सामाजिक मुक्ति का सवाल प्रमुख रूप से दिखाई पड़ते हैं जिसको आज सिनेमा में देखने की जरूरत है। 1947 में जब देश स्वतंत्र होता है और भारतीय समाज में चारों ओर गांधी और नेहरू की तस्वीर दिखाई पड़ती है, जिसका प्रभाव साहित्य में भी देखने को मिलता है। नई कहानी, नई कविता और गजल में विशेष कर दिखाई पड़ता है।

यथार्थ बोध को नए भाव बोध, भाषा और सामाजिक विकास की प्रक्रिया के साथ जोड़कर देख सकते हैं। यह परिवर्तन 1947 के पूर्व नहीं था। इसे हमें सिनेमा के माध्यम से उस समय की त्रासदी को देखने की जरूरत है। स्वाधीनता के बाद 1956 की एक प्रमुख घटना है, उस समय डॉ. भीमराव आंबेडकर ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया।

इसी प्रकार 1967 में नक्सलबाड़ी की घटना हमें देखने को मिलती है। यह दोनों घटनाएँ साहित्य और राजनीति को कुछ ज्यादा ही प्रभावित करती रही हैं। जिन्हें समाज में हमेशा से नजरअंदाज करने की कोशिश की गई है। इसी प्रकार के तमाम प्रभावकारी घटनाए हैं जिसकी छानबीन करना सिनेमा की जरूरत है। 1990 में मण्डल कमीशन लागू होने के बाद दलित सर्जन की शुरुआत होती है। दलित साहित्य लेखन से सिनेमा की समस्याएं और जरूरतें दोनो अधिक तेजी से बढ़नी शुरू हो गयी। साथ ही इनके समानान्तर स्त्री लेखन और आदिवासी लेखन भी चल रहा था। स्त्री और दलित लेखन सामाजिक अस्मिता और समुदाय के संघर्ष से जुड़े मुद्दे हैं। इनकी नयी दृष्टि से सिनेमा के माध्यम से नए सौंदर्यशास्त्र या सिनेमा की मूल्यांकन की अधिक जरूरत दिखाई पड़ती है।

प्रसिद्ध विद्वान ब्रेख्त ने बहुत पहले बहुत ही सीधे शब्दों में कहा था कि–''सिनेमा के बदलने से लोग नहीं बदलेंगे, बल्कि लोगों का जीवन बदल जाए तो सिनेमा बदल जाएगा। इसीलिए आज की अर्थव्यवस्था में मनोरंजन फिल्मों की जगह कला फिल्मे बनाने का परिणाम निकलेगा, रद्दी कला और बुरा व्यवसाय।''[3]

हिंदी सिनेमा आज के दौर में कुछ समकालीन विमर्शों और समीक्षाओं के बीच सिमट कर रह गया है। समकालीन रचनात्मकता के अनुसार सिनेमा के समृद्ध परंपरा और पृष्ठभूमि पर कम ही विचार हो पा रहा है। वैचारिक उलझाव को दूर करने का अधिक से अधिक प्रयास ही सिनेमा की पहली जरूरत होनी चाहिए, जो हमें सिनेमा में भी दिखाई पड़ती है।

भारतीय समाज का मार्मिक वर्णन हमें फिल्मों के माध्यम से ही देखने को मिला है। सिनेमा एक अभिनय एवं संवाद का माध्यम है जो अपनी बातों का लोगों के बीच तक आसानी से पहुंचा देता है। गीतकार शैलेन्द्र आम व्यक्ति की पीड़ा बहुत गहराई से समझते थे। इसीलिए जब आम आदमी अपनी माँगों को लेकर हड़ताल करते थे तो उसी दर्द को अपने गीतों के माध्यम से लोग जोर–शोर से गाते हैं। यह गीत शैलेंद्र ने 1949 में लिखा था –

''हर जोर जुल्म की टक्कर में हड़ताल
हमारा नारा है। तुमने मांगे ठुकुराई है,
तुमने तोड़ा है हर वादा। छिना हमसे
अनाज सस्ता। तुम छटनी पर हो आमादा।
तो अपनी भी तैयारी है, तो हमने भी ललकारा है।''[4]

फिल्म सिद्धान्तकारों के मुताबिक 'सिनेमा एक प्रकार की पद्धति है।' जो समाज के बीच सिनेमा के माध्यम से पहुंचता है।

भारतीय सिनेमा भारतीय समाज में ठीक वही कार्य कर रहा है जो पहले हमें मिथक लोक–कथाओं के वर्णन में हमारे मध्यकाल में जोर–शोर से देखने को मिलता था या किया गया था। पश्चिम के सिनेमा में दर्शकों को सिनेमा के प्रति रुचि विकसित की गई। फिल्म ने लोगों के ऊपर अपना प्रभाव एवं संस्कार किस तरह डाला। यही सिनेमा की शैली अत्यधिक लोगों को रूढ़िवादी बना डालती है।

सबसे बड़ी बात यह है कि–''हिंदी सिनेमा पर व्यापार का एकाधिकार, हमें फिल्म निर्माण के फार्मूला बद्धता, कलात्मकता सौंदर्य दृष्टि का अभाव, दर्शकों के बौद्धिक और मानसिक विकास के निम्नस्तरीय कुत्सित और कुरुचिपूर्ण फिल्म दृश्यों के प्रति नशीला आकर्षण उत्पन्न करने के लिए फिल्म निर्माता का प्रयत्न, वितरण और प्रदर्शन के क्षेत्र में अच्छी फिल्म का निर्माण न करने देने का षडयंत्र, सामाजिक और मानवीय समस्याओं की उपेक्षा कुरुचिपूर्ण और थोड़े मनोरंजन द्वारा मात्र धन कमाने की लालसा आदि चर्चा करते हुए विकल्प के रूप में नए सिनेमा की आवश्यकता, उपयोगिता और उद्देश्य पर प्रकाश डाला गया है।''[5]

साहित्य मानव धर्म का सहज धर्म रहा है। समस्त मानव का धर्म के प्रति व्याख्या हमें कहीं देखने को मिलता है तो वह एक माध्यम सिनेमा ही हो सकता है। सिनेमा जन–जन के कल्याण तथा समस्त मानवतावादी दीन–दुखियों, अपाहिजों, अपंगों एवं अनाथों की सदा से आवाज रहा है। इसीलिए फिल्म जगत जनकल्याण की सतत अभिलाषा हमें देखने को मिलती है। मानसिक अंधकार, अपने हृदय में उठती हुई शंकाओं के आघात, अपनी आत्मचेतना, अनजाने हृदय की छटपटाहट आदि का हमें उन सिनेमा के माध्यम से समाज में घट रही सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोना रूपों में देखने को मिलता है। सिनेमा अपने समाज की सच्चाई से लोगों को

रूबरू कराता है। सिनेमा लोगों में आत्मसम्मान एवं जीवन जीने के बेहतरीन नजरिया प्रदान करता है तथा कुछ जानकारियाँ हमारे समाज को साहित्य एवं सिनेमा के माध्यम से भी लोगों तक भी पहुंचती है।

प्रहलाद अग्रवाल ने सिनेमा और समाज के रचनात्मक साहचर्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि समाज के तमाम बहुसंख्यक वर्गों में आज भी निरक्षरता बनी हुई है और यह दिन–प्रतिदिन और अधिक बढ़ती ही जा रही है। उसमें कोई ज्यादा सुधार की संभावनाएं दिखाई नहीं पड़ती हैं। इन्हीं सभी का चित्रण, सुख–दुःख अनुभूति को अपने अंदर समाहित करके उसे शब्दों के माध्यम से एक रूप प्रदान करता है, जो सिर्फ साहित्यकार ही इन सबका वर्णन कर सकता है, जो संवेदनशील एवं मानवता के प्रतीक भी हैं। स्पष्टतः कोई भी कालजयी रचना बिना किसी सैद्धांतिकी के कालजयी नहीं हो सकती। समाज की भी अपनी एक सैद्धांतिकी पर ही निर्मित किए जाते हैं। स्पष्ट रूप से कोई भी साहित्य रचना बिना सैद्धांतिकी के ख्याति नहीं प्राप्त कर सकती है, इसलिए सैद्धांतिकी सिनेमा साहित्य में भी वही रोल अदा करती है।

अपने समाज की वास्तविकता एवं समय की सच्चाई और इतिहास की गति की जानकारी अगर हमें कहीं से मिलती है वह हमें सिनेमा के रूप में ही देखने को मिलती है। वह कई रूपों में भी हो सकती है। यही वजह है कि दूसरे काल–रूपों की तुलना में सिनेमा समाज पर अधिक निर्भर होता है और उसका विकास समाज के विकास के साथ–साथ निरंतर होता चला जाता है। सिनेमा समाज के उन तमाम चीजों से अवगत कराता है जो सामाजिक एवं समकालीन विमर्श, राजनीति, क्षेत्रीय समस्याओं को सिनेमा के रूप में लोगों के सामने प्रस्तुत करता है। किसी घटना को एक प्रधान विषय बनाकर लोगों को उस घटना से सिनेमा के माध्यम से अवगत कराना होता है।

लेखक ख्याजा अहमद अब्बास के अनुसार ''कोई भी फिल्म इसीलिए बेहतर नहीं मानी जा सकती है कि उसमें एक हजार अभिनेता हैं या केवल एक ही अभिनेता हैं, फिल्म बेहतर होती है अपनी विषय वस्तुत से।''[6]

विजय अग्रवाल क अनुसार–''कलात्मक फिल्मों में समाज के बाह्म संघर्ष के बजाय आंतरिक संघर्षों की प्रधानता होती है। इन पर लगाये जाने वाले बौद्धिकता के आरोप का मुख्य कारण यही है। यह सही है कि, अब तक की ऐसी फिल्में एक विशेष दर्शक वर्ग की मांग करती हैं लेकिन इनकी सार्थकता तभी है, जब ये आम दर्शकों तक पहुंचे। निर्देशकों को चाहिए कि वे सामाजिक संबंधों की जटिलताओं और अंतरमन के संघर्षों को अधिक से अधिक सरल और सुलझे रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करें।''[7]

सिनेमा एक माध्यम है, जो हमारे पीछे छुपे हुए समाज के जन–जन का दुःख–सुख एवं नग्न यथार्थ को लोगों के सामने एक माध्यम बनाकर प्रस्तुत करता है। यह सिर्फ फिल्म निर्देशक ही सोच सकता है। इस तरह सिनेमा का अपना अलग स्वरूप देखने को मिलता है। क्योंकि सिनेमा में स्क्रिप्ट लेखन के पश्चात् संवाद लेखन, दृश्य आदि को ध्यान में रखते हुए ही सिनेमा का निर्माण किया जा सकता है। लेखक, निर्माता, निर्देशक से लेकर अनेक सहायक निर्देशकों का सिनेमा को एक नया रूप देने में बहुत बड़ा योगदान रहता है। जैसे–कास्टिंग निर्देशक, लोकेशन प्रबंध, निर्माण, प्रबंधक, छायांकन निर्देशक, आडियो ग्राफर, ध्वनि, संपादक ध्वनि, डिजाइनर, कास्टयूम डिजाइनर, नृत्य निर्देशक आदि सभी के योगदान से सिनेमा मनोरंजन योग्य बन कर तैयार होता है। इनके नेतृत्व के साथ–साथ समाज के उन तमाम समता, न्याय, बंधुता, विकास को निचोड़कर सिनेमा का स्वरूप प्रदान किया जाता है, जो समाज के रूढ़िगत रूप को त्याग कर तर्क के आधार पर परिभाषित करता है। चाहे वह राजनीतिक एवं समाज व्यवस्था में मौलिक और क्रांतिकारी परिवर्तनों का सूत्रपात हमें देखने को मिलता है।[8]

प्रहलाद अग्रवाल, सिनेमा और समाज की रचनात्मकता के संदर्भ में कहते हैं कि, सिनेमा का निर्माण दर्शकों के अनुसार ही किया जाता है। मानवता सिद्धांत के लिए या व्यक्ति के निजी संबंधों के लिए सिनेमा निर्देशक समाज की व्यवस्था देखते हुए सिनेमा का निर्माण उसी परिवेश में करता है। समाज और सिनेमा की अपनी विशिष्ट पहचान है। सिनेमा और समाज दोनों का योगदान जहाँ किसी व्यक्ति विशेष न होकर सभी वर्गों या समुदाय को साथ जोड़ने का प्रयास करता है, संगीत संवाद, वाद–विवाद फिल्म को एक अतिविशिष्ट रूप प्रदान करती है, जिससे फिल्मों में या तो वह अपनी ऐतिहासिकता एवं वर्तमान में हो रहे अन्याय समाज में दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। इसलिए फिल्म और साहित्य यह दोनों ही समाज को या व्यक्ति विशेष को आईना दिखाने का कार्य करती है। सिनेमा से व्यक्ति को आसानी से जोड़ा जा सकता है वही साहित्य से नहीं। साहित्य या शिक्षित व्यक्ति ही अपनी बात रख सकता है। सिनेमा उन तमाम लोगों की आवाज भी बनता है जो

इन चीजों से अब तक रूबरू नहीं थे। किसी कारणवश सिनेमा का यह स्वभाव होता है कि, वह व्यक्ति को अपनी तरफ आकर्षित करता है। दर्शकों को प्रभावित करके उन तक अपना संदेश पहुंचाने की कोशिश करता है। यही सिनेमा का कार्य है।[9]

समाज में व्याप्त कुरीतियों को फिल्मों के माध्यम से लोगों के सामने प्रस्तुत करने की कोशिश की जाती है। सिनेमा दृश्य माध्यम की आधुनिक विधा है, यही कारण है कि सिनेमा अपने आरम्भिक कार्य से अवधि तक साहित्य और समाज से जुड़ा रहा है। इक्कीसवीं सदी में सिनेमा न अभिव्यक्ति के सबसे सशक्त सृजनशील माध्यम के रूप में उभरकर अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। अपने शुरुआती दिनों में ही फिल्म, साहित्य और समाज में एक विशेष प्रकार का संबंध विकसित होने लगा था। साहित्य के पास जहाँ सदियों पुराना अनुभव है। वहीं समाज में घट रहे सार्थक या निरर्थक परिवर्तनों का सरल एवं मनोरंजक रूप फिल्मों के माध्यम से देखने को मिलता है। फिल्म को भी साहित्य की भाँति समाज का आईना कहा जा सकता है। जिस प्रकार साहित्य अपने समय और समाज से गहरे अर्थों में प्रभावित होता है, उसी प्रकार फिल्मों से भी प्रभावित होता है। इसलिए साहित्य एवं सिनेमा दो अलग–अलग विधा होते हुए भी दोनों एक–दूसरे के बहुत करीब हैं।

सिनेमा और समाज का रचनात्मक सहचर्य एक ऐसा संबंध है, जो दोनों के बीच गहरे संवाद और अंतर्संबंध को दर्शाता है। सिनेमा न केवल समाज का प्रतिबिंब है, बल्कि समाज के बदलते विचारों, भावनाओं, और संवेदनाओं को भी आकार देता है। इस सहचर्य का विस्तृत विवेचन निम्नानुसार है –

सिनेमा अक्सर समाज के समक्ष महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दों को उठाता है, जैसे जातिवाद, धर्म, लिंग भेदभाव, और गरीबी। उदाहरण के लिए, 'पिक' और 'धर्म' जैसी फिल्में नारी सशक्तिकरण और धार्मिक भेदभाव की समस्याओं को उजागर करती हैं। ये फिल्में समाज में जागरूकता लाने और विचार विमर्श को प्रोत्साहित करने में सहायक होती हैं।

सिनेमा विभिन्न सांस्कृतिक मान्यताओं, परंपराओं और जीवनशैली को दर्शाने का एक प्रभावी माध्यम है। यह क्षेत्रीय भाषाओं, त्योहारों, और सांस्कृतिक गतिविधियों को व्यापक दर्शकों तक पहुँचाने का कार्य करता है। 'गुंडे', 'सैराट', और 'बाहुबली' जैसी फिल्में न केवल मनोरंजन करती हैं, बल्कि भारतीय संस्कृति की विविधता को भी प्रदर्शित करती हैं।

सिनेमा मानवीय भावनाओं, संबंधों और जटिलताओं का गहन अन्वेषण करता है। यह प्रेम, दोस्ती, संघर्ष, और परिवार के बंधनों को जीवन्त रूप में प्रस्तुत करता है। 'तारे जमीन पर' और '3 इडियट्स' जैसी फिल्में बच्चों के मनोविज्ञान और माता–पिता के दबाव पर ध्यान केंद्रित करती हैं, जो दर्शकों को गहराई से प्रभावित करती हैं।

सिनेमा सामाजिक बदलाव की दिशा में एक प्रेरक बल के रूप में कार्य करता है। कई फिल्में सामाजिक साक्षरता को बढ़ावा देने और नए विचारों को फैलाने का काम करती हैं। 'रंग दे बसंती' जैसी फिल्म ने युवाओं में देशभक्ति और सक्रियता का संचार किया।

सिनेमा पारिवारिक और सामाजिक संबंधों की जटिलताओं को प्रभावशाली तरीके से दर्शाता है। यह उन मान्यताओं और धारणाओं को चुनौती देता है जो समय के साथ बदल रही हैं। 'काबिल' और 'बरेली की बर्फी' जैसो फिल्में पारिवारिक मूल्य और रिश्तों की नए तरीके से व्याख्या करती हैं।

सिनेमा न केवल समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं को प्रभावित करता है, बल्कि इसकी आर्थिक स्थिति पर भी गहरा प्रभाव डालता है। फिल्म उद्योग लाखों लोगों को रोजगार देता है और स्थानीय अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाता है। फिल्म निर्माण के लिए निवेश और उत्पादन से लेकर वितरण और विपणन तक, यह कई व्यवसायों को प्रभावित करता है।

सिनेमा परंपरागत मूल्यों और आधुनिक विचारों के बीच संघर्ष को भी प्रस्तुत करता है। यह अक्सर उस परिदृश्य को चित्रित करता है जहाँ युवा पीढ़ी अपने परंपरागत मूल्यों और आधुनिक विचारों के बीच संतुलन बनाने की कोशिश कर रही होती है। 'जवानी जानेमन' और 'कपूर एंड संस' जैसी फिल्में इस संघर्ष को खूबसूरती से दर्शाती हैं।

सिनेमा राजनीतिक विचारों और दृष्टिकोणों को भी व्यक्त करने का एक माध्यम है। यह अक्सर राजनीतिक विमर्शों और सामाजिक आंदोलनों को उजागर करता है। 'गुलाल' और 'मुल्क' जैसी फिल्में राजनीतिक मुद्दों पर प्रकाश डालती हैं और दर्शकों को सोचने पर मजबूर करती हैं।

सिनेमा एक मंच प्रदान करता है जहाँ दर्शक विभिन्न विचारधाराओं और दृष्टिकोणों के बीच संवाद कर सकते हैं। यह विभिन्न दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करता है, जिससे दर्शकों में विचारों का पुनर्मूल्यांकन होता है।

सिनेमा मनोरंजन का एक साधन है, लेकिन यह शिक्षाप्रद भी हो सकता है। यह लोगों को सीखने और सोचने के लिए प्रेरित करता है, जिससे मनोरंजन के साथ–साथ ज्ञान का भी संचार होता है।

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सिनेमा और समाज का रचनात्मक सहचर्य एक गहरा और जटिल संबंध है। सिनेमा न केवल समाज का प्रतिबिंब है, बल्कि यह समाज के विचारों, संस्कारों और मूल्यों को आकार देने का कार्य भी करता है। यह सामाजिक संवाद को प्रोत्साहित करता है और जागरूकता फैलाने का एक प्रभावी माध्यम है। इस प्रकार, सिनेमा समाज के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो इसे एक सशक्त और प्रभावशाली कला रूप बनाता है।

संदर्भ –

1 वसुधा, हिन्दी सिनेमा बीसवीं से इक्कीसवीं सदी तक, कथन राजेन्द्र शर्मा, पृष्ठ 4
2 वसुधा, हिन्दी सिनेमा बीसवीं से इक्कीसवीं सदी तक, कथन कमला प्रसाद, पृष्ठ 16
3 विवेकानन्द – साहित्य और सिनेमा रूपांतरण, पृष्ठ 31
4 विवेकानंद – साहित्य और सिनेमा रूपान्तरण, पृष्ठ 32
5 विवेकानंद – साहित्य और सिनेमा रूपान्तरण, पृष्ठ 31
6 ख्वाजा अहमद अब्बास – साहित्य और सिनेमा की सैद्धांतिकी, पृष्ठ 37
7 विजय अग्रवाल – साहित्य और सिनेमा की सैद्धान्तिकी, पृष्ठ 37
8 विवेकानंद – साहित्य और सिनेमा रूपान्तरण, पृष्ठ 38
9 विवेकानंद – साहित्य और सिनेमा रूपान्तरण, पृष्ठ 22–23